IJMRSETM

e-ISSN: 2395 - 7639

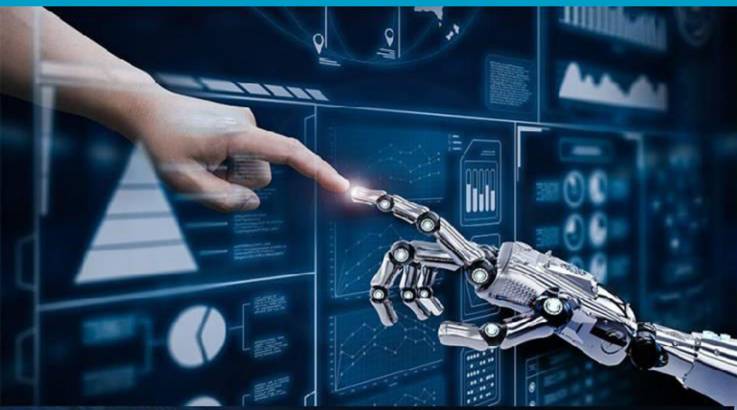

INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY RESEARCH

IN SCIENCE, ENGINEERING, TECHNOLOGY AND MANAGEMENT

Volume 10, Issue 12, December 2023

INTERNATIONAL STANDARD SERIAL NUMBER INDIA

Impact Factor: 7.580

+91 99405 72462 +9163819 07438 ijmrsetm@gmail.com www.ijmrsetm.com

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal |

| Volume 10, Issue 12, December 2023 |

चित्रकला अभिव्यक्ति के सशक्त माध्यम

DR. SHAHLA HASAN

ASSOCIATE PROFESSOR, IN PAINTING DEPT. OF VISUAL ART, HAMIDIA PG COLLEGE, PRAYAGRAJ , ALLAHABAD, UTTAR PRADESH, INDIA

सार

भारत में चित्रकला का इतिहास बहुत पुराना रहा हैं। पाषाण काल में ही मानव ने गुफा चित्रण करना शुरु कर दिया था। होशंगाबाद और भीमबेटका क्षेत्रों में कंदराओं और गुफाओं में मानव चित्रण के प्रमाण मिले हैं। इन चित्रों में शिकार, शिकार करते मानव समूहों, स्त्रियों तथा पशु-पक्षियों आदि के चित्र मिले हैं। अजंता की गुफाओं में की गई चित्रकारी कई शताब्दियों में तैयार हुई थी, इसकी सबसे प्राचीन चित्रकारी ई.पू. प्रथम शताब्दी की हैं। इन चित्रों मे भगवान बुद्ध को विभिन्न रुपों में दर्शाया है

परिचय

गुफाओं से मिले अवशेषों और साहित्यिक स्रोतों के आधार पर यह स्पष्ट है कि भारत में एक कला के रूप में 'चित्रकला' बहुत प्राचीन काल से प्रचलित रही है। भारत में चित्रकला और कला का इतिहास मध्यप्रदेश की भीमबेटका गुफाओं की प्रागैतिहासिक काल की चट्टानों पर बने पशुओं के रेखांकन और चित्रांकन के नमूनों से प्रारंभ होता है। महाराष्ट्र के नरसिंहगढ़ की गुफाओं के चित्रों में चितकबरे हरिणों की खालों को सूखता हुआ दिखाया गया है। इसके हजारों साल बाद रेखांकन और चित्रांकन हड़प्पाकालीन सभ्यता की सील पर भी पाया जाता है।

हिन्दु और बौद्ध दोनों साहित्य ही कला के विभिन्न तरीकों और तकनीकों के विषय में संकेत करते हैं जैसे लेप्यचित्र, लेखाचित्र और धूलिचित्र। पहली प्रकार की कला का सम्बन्ध लोक कथाओं से है। दूसरी प्रागेतिहासिक वस्त्रों पर बने रेखा चित्र और चित्रकला से संबंद्ध है और तीसरे प्रकार की कला फर्श पर बनाई जाती है।

ईसा पूर्व पहली शताब्दी के लगभग चित्रकला षडंग (चित्रकला के छः अंग) का विकास हुआ। वात्स्यायन का जीवनकाल ईसा पश्चात ३री शताब्दी है। उन्होने कामसूत्र में इन छः अंगो का वर्णन किया है। कामसूत्र के प्रथम अधिकरण के तीसरे अध्याय की टीका करते हुए यशोधर पंडित ने आलेख्य (चित्रकला) के षडंग बताए हैं-[1]

- (१) रूपभेद
- (२) प्रमाण - सही नाप और संरचना आदि
- (३) भाव
- (४) लावण्य योजना
- (५) सादृश्य विधान
- (६) वर्णिकाभंग

रूपभेदाः प्रमाणनि भावलावण्ययोजनम्।
सादृश्यं वर्णिकाभंग इति चित्र षंड्गकम् ॥

बौद्ध धर्म ग्रंथ विनयपिटक (4-3 ईसा पूर्व) में अनेकों शाही इमारतों पर चित्रित आकृतियों के अस्तित्व का वर्णन प्राप्त होता है। मुद्राराक्षस नाटक (पांचवी शती ईसा-पश्चात) में भी अनेकों चित्रों या चित्रपटों का उल्लेख है। छठी शताब्दी के सौंदर्यशास्त्र के ग्रंथ वात्स्यायनकृत 'कामसूत्र' ग्रंथ में 64 कलाओं के अंतर्गत चित्रकला का भी उल्लेख है और यह भी कहा गया है कि यह कला वैज्ञानिक सिद्धांतों पर आधारित है। सातवीं शताब्दी (ईसा पश्चात) के विष्णुधर्मोत्तर पुराण में एक अध्याय चित्रकला पर भी है जिसका नाम 'चित्रसूत्र' है। इसमें बताया गया है कि चित्रकला के छह अंग हैं- आकृति की विभिन्नता, अनुपात, भाव, चमक, रंगों का प्रभाव आदि। अतः पुरातत्त्वशास्त्र और साहित्य प्रागैतिहासिक काल से ही चित्रकला के विकास को प्रमाणित करते आ रहे हैं। विष्णुधर्मोत्तर पुराण के चित्रसूत्र में चित्रकला का महत्त्व इन शब्दों में बया गया है-[1]

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal |

| Volume 10, Issue 12, December 2023 |

कलानां प्रवरं चित्रम् धर्मार्थ काम मोक्षादं।
मांगल्य प्रथम् दोतद् गृहे यत्र प्रतिष्ठितम् ॥38॥[2]

गुप्तकालीन चित्रकला के सर्वोत्तम नमूने अजन्ता में प्राप्त हैं। उनकी विषयवस्तु थी, पशु-पक्षी, वृक्ष, फूल, मानवाकृतियाँ और जातक कथाएँ।

भित्तिचित्र, छतों पर और पहाड़ी दीवारों पर बनाए जाते हैं। गुफा नं 9 के चित्र में बौद्ध-भिक्षुओं को स्तूप की ओर जाता हुआ दर्शाया गया है। 10 नं. की गुफा में जातक कहानियाँ चित्रित की गई हैं परंतु सर्वोत्कृष्ट चित्र पांचवीं-छठी शताब्दी के गुप्त काल में प्राप्त हुए हैं। ये भित्तिचित्र प्रमुखतया बुद्ध के जीवन और जातक कथाओं में धार्मिक कृत्यों को दर्शाते हैं परंतु कुछ चित्र अन्य विषयों पर भी आधारित हैं। इनमें भारतीय जीवन के विभिन्न पक्षों को दर्शाया गया है। राजप्रासादों में राजकुमार, अन्तःपुरों में महिलाएँ, कन्धों पर भार उठाए कुली, भिक्षुक, किसान, तपस्वी एवं इनके साथ अन्य भारतीय पशु-पक्षियों तथा फूलों का चित्रण किया गया है।

चित्रों में प्रयुक्त सामग्री : विभिन्न प्रकार के चित्रों में भिन्न-भिन्न सामग्रियों का प्रयोग किया जाता था। साहित्यिक स्रोतों में चित्रशालाओं और शिल्पशास्त्रों (कला पर तकनीकी ग्रन्थ) के संदर्भ प्राप्त होते हैं।

तथापि चित्रों में जिन रंगों का प्रमुख रूप से उपयोग किया गया है, वे है धातु रंग, चटख लाल कुमकुम या सिन्दूर, हरीताल (पीला) नीला, लापिसलाजुली नीला, काला, चाक की तरह सफेद खड़िया मिट्टी, (गेरु माटी) और हरा। ये सभी रंग भारत में सुलभ थे सिवाय लापीस लेजुली के। ये संभवतः पाकिस्तान से आता था। कुछ दुर्लभ अवसरों पर मिश्रित रंग जैसे सलेटी आदि भी प्रयोग किए जाते थे। रंगों के प्रयोग का चुनाव विषय वस्तु और स्थानीय वातावरण के अनुसार सुनिश्चित किया जाता था।

बौद्ध चित्रकला के अवशेष उत्तर भारतीय 'बाघ' नामक स्थान पर तथा छठी और नौवीं शताब्दी के दक्षिण भारतीय स्थानों पर स्थित बौद्ध गुफाओं में प्राप्त होते हैं। यद्यपि इन चित्रों की विषयवस्तु धार्मिक है परंतु अपने अन्तर्निहित भावों और अर्थों के अनुसार इनसे अधिक धर्मनिरपेक्ष दरबारी और सम्भ्रान्त विषय नहीं हो सकते। यद्यपि इन चित्रों के बहुत कम ही अवशेष पाये जाते हैं परंतु उनमें अनेकों चित्र देवी-देवताओं, देवसदृश किन्नरों और अप्सराओं, विभिन्न प्रकार के पशु-पक्षी, फल-फूलों सहित प्रसन्नता, प्रेम, कृपा और मायाजाल आदि के भावों को भी दर्शाते हैं। इनके अन्य उदाहरण बादामी (कर्नाटक) की गुफा सं 3, कांचीपुरम के मन्दिरों, सित्तनवासल (तमिलनाडु) की जैनगुफाओं तथा एलोरा (आठवीं और नवीं शताब्दी) तथा कैलाश और जैन गुफाओं में पाए जाते हैं। बहुत से अन्य दक्षिण भारतीय मंदिरों जैसे तंजौर के वृहदेश्वर मंदिर के भित्तिचित्र महाकाव्यों और पुराण कथाओं पर आधारित हैं। जहाँ एक ओर बाघ, अजंता और बदामी के चित्र उत्तर और दक्षिण की शास्त्रीय परम्पराओं के नमूने प्रस्तुत करते हैं, सित्तनवासल, कांचीपुरम, मलयादिपट्टी, तिरूमलैपुरम के चित्र दक्षिण में इसके विस्तार को भलीप्रकार दर्शाते हैं। सितानवसल (जैनसिद्धों के निवास) के चित्र जैन धर्म की विषयवस्तु से संबद्ध हैं जबकि अन्य तीन स्थानों के चित्र जैन अथवा वैष्णव धर्म के प्रेरक हैं। यद्यपि ये सभी चित्र पारंपरिक धार्मिक विषय वस्तु पर आधारित हैं, तथापि ये चित्र मध्ययुगीन प्रभावों को भी प्रदर्शित करते हैं जैसे एक ओर सपाट और अमूर्त चित्रण और दूसरी ओर कोणीय तथा रेखीय डिज़ाइन।

मध्यकालीन भारत में चित्रकला

दिल्ली सल्तनत के काल में शाही महलों और शाही अन्तःपुरों और मस्जिदों से भित्तिचित्रों के वर्णन प्राप्त हुए हैं। इनमें मुख्यतया फूलों, पत्तों और पौधों का चित्रण हुआ है। इल्तुतमिश (1210-36) के समय में भी हमें चित्रों के सन्दर्भ प्राप्त होते हैं। अलाउद्दीन खिलजी (1296-1316) के समय में भी हमें भित्ति चित्र तथा वस्त्रों पर चित्रकारी और अलहकत पाण्डुलिपियों पर लघुचित्र प्राप्त होते हैं। सल्तनत काल में हम भारतीय चित्रकला पर पश्चिमी और अरबी प्रभाव भी देखते हैं। मुस्लिम शिष्टवर्ग के लिए ईरान और अरब देशों से फ़ारसी और अरबी की अलंकृत पाण्डुलिपियों के भी आने के सन्दर्भ प्राप्त होते हैं। इस काल में हमें अन्य क्षेत्रीय राज्यों से भी चित्रों के सन्दर्भ मिलते हैं। ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर के महल को अलंकृत करने वाली चित्रकारी ने बाबर और अकबर दोनों को ही प्रभावित किया। 14वीं 15वीं शताब्दियों में सूक्ष्म चित्रकारी गुजरात और राजस्थान में एक शक्तिशाली आन्दोलन के रूप में उभरी और केन्द्रीय, उत्तरी और पूर्वी भारत में अमीर और व्यापारियों के संरक्षण के कारण फैलती चली गई। मध्यप्रदेश में मांडु, पूर्वी उत्तरप्रदेश में जौनपुर और पूर्वी भारत में बंगाल - ये अन्य बड़े केंद्र थे जहाँ पाण्डुलिपियों को चित्रकला से सजाया जाता था।[2]

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal |

| Volume 10, Issue 12, December 2023 |

9-10वीं शती में बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा आदि पूर्वी भारतीय प्रदेशों में पाल शासन के अंतर्गत एक नई प्रकार की चित्रण शैली का प्रादुर्भाव हुआ जिसे 'लघुचित्रण'(miniature) कहा जाता है। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, ये लघुचित्र नाशवान पदार्थों पर बनाए जाते थे। इसी श्रेणी के अंतर्गत इनसे बौद्ध, जैन और हिन्दु ग्रंथों की पाण्डुलिपियों को भोजपत्रों पर सजाया जाने लगा। ये चित्र अजंता शैली से मिलते जुलते थे परंतु सूक्ष्म स्तर पर। ये पाण्डुलिपियाँ व्यापारियों के अनुग्रह पर तैयार की जाती थीं जिन्हें वे मंदिरों और मठों को दान कर देते थे।

तेरहवीं शताब्दी के पश्चात उत्तरी भारत के तुर्की सुलतान अपने साथ पारसी दरबारी संस्कृति के महत्त्वपूर्ण स्वरूपों को भी अपने साथ लाए। पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दियों में पश्चिम प्रभाव की अलंकृत पाण्डुलिपियाँ मालवा, बंगाल, दिल्ली, जौनपुर, गुजरात और दक्षिण में बनाई जाने लगीं। भारतीय चित्रकारों की ईरानी परम्पराओं से अन्तःक्रिया दोनों शैलियों के सम्मिश्रण में फलीभूत हुई जो 16वीं शताब्दी के चित्रों में स्पष्ट झलकती है। प्रारम्भिक सल्तनत काल में पश्चिमी भारत में जैन समुदाय द्वारा चित्रकला के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान किया गया। जैन शास्त्रों की अलंकत पाण्डुलिपियाँ मन्दिर के पुस्तकालयों को उपहरस्वरूप दे दी गई। इन पाण्डुलिपियों में जैन तीर्थंकरों के जीवन और कृत्यों को दर्शाया गया है। इन पाठ्यग्रंथों के स्वरूप को अलंकत करने की कला को मुगल शासकों के संरक्षण में एक नया जीवन मिला। अकबर और उनके परवर्ती शासक चित्रकला और भोग विषयक उदाहरणों में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाए। इसी काल से किताबों की सजावट या व्यक्तिगत लघुचित्रों में भित्तिचित्रकारी का स्थान एक प्रमुख शैली के रूप में विकसित हुआ। अकबर ने कश्मीर और गुजरात के कलाकारों को संरक्षण दिया। हुमायू ने अपने दरबार में दो ईरानी चित्रकारों को प्रश्रय दिया। पहली बार चित्रकारों के नाम शिलालेखों पर भी अंकित किए गए। इस काल के कुछ महान चित्रकार थे अब्दुस्समद, दसवंत तथा बसावन। बाबरनामा और अकबरनामा के पृष्ठों पर चित्रकला के सुंदर उदाहरण पाये जाते हैं।

कुछ ही वर्षों में पारसी और भारतीय-शैली के मिश्रण से एक सशक्त शैली विकसित हुई और स्वतंत्र 'मुगल चित्रकला' शैली का विकास हुआ। 1562 और 1577 ई. के मध्य नई शैली के आधार पर प्रायः 1400 वस्त्रचित्रों की रचना हुई और इन्हें शाही कलादीर्घा में रखा गया। अकबर ने प्रतिकृति बनाने की कला को भी प्रोत्साहित किया। चित्रकला जहांगीर के काल में अपनी चरम सीमा पर थी। वह स्वयं भी उत्तम चित्रकार और कला का पारखी था। इस समय के कलाकारों ने चटख रंग जैसे मोर के गले सा नीला तथा लाल रंग का प्रयोग करना और चित्रों को त्रि-आयामी प्रभाव देना प्रारंभ कर दिया था। जहांगीर के शासन काल के मशहूर चित्रकार थे- मंसूर, बिशनदास तथा मनोहर। मंसूर ने चित्रकार अबुलहसन की अद्‌भुत प्रतिकृति बनाई थी। उन्होंने पशु-पक्षियों को चित्रित करने में विशेषता प्राप्त की थी। यद्यपि शाहजहाँ भव्य वास्तु कला में अधिक रुचि रखता था, उसके सबसे बड़े बेटे दाराशिकोह ने अपने दादा की तरह ही चित्रकला को बढ़ावा दिया। उसे भी प्राकृतिक तत्त्व जैसे पौधे, पशु आदि को चित्रित करना अधिक पसंद था। तथापि औरंगजेब के समय में शाहीसंरक्षण के अभाव में चित्रकारों को देश के विभिन्न भागों में पनाह लेने को बाध्य होना पड़ा। इससे राजस्थान और पंजाब की पहाड़ियों में चित्रकला के विकास को प्रोत्साहन मिला और चित्रकला की विभिन्न शैलियाँ जैसे राजस्थानी शैली और पहाड़ी शैली विकसित हुईं। ये कृतियाँ एक छोटी सी सतह पर चित्रित की जाती थीं और इन्हें 'लघुचित्रकारी' कहां जाने लगा। इन चित्रकारों ने महाकाव्यों, मिथकों और कथाओं को अपने चित्रों की विषयवस्तु बनाया। अन्य विषय थे बारहमासा, रागमाला (लय) और महाकाव्यों के विषय आदि। लघुचित्रकला स्थानीय केन्द्रों [3] जैसे कांगड़ा, कुल्लू, बसोली, गुलेर, चम्बा, गढ़वाल, बिलासपुर और जम्मू आदि में विकसित हुई।

पन्द्रहवीं और सोलहवीं शती में भक्ति आन्दालेन के उद्भव ने वैष्णव भक्तिमार्ग की विषयवस्तु पर चित्र सज्जित पुस्तकों के निर्माण को प्रोत्साहित किया। पूर्व मुगल काल में भारत के उत्तरी प्रदेशों में मंदिरों की दीवारों पर भित्तिचित्रों के निर्माण को प्रोत्साहन मिला।

== आधुनिक काल अठारहवीं शदी के उत्तरार्ध और उन्नीसवीं शती के प्रारंभ में चित्रकला अर्ध-पाश्चात्य स्थानीय शैलियों पर आधारित थी जिसको ब्रिटिश निवासियों और ब्रिटिश आगुन्तकों ने संरक्षण प्रदान किया। इन चित्रों की विषयवस्तु भारतीय सामाजिक जीवन, लोकप्रिय पर्व और मुगलकालीन स्मारकों पर आधारित होती थीं। इन चित्रों में परिष्कृत मुगल परम्पराओं को प्रतिबिम्बित किया गया था। इस काल की सर्वोत्तम चित्रकला के कुछ उदाहरण हैं- लेडी इम्पे के लिए शेख जियाउद्दीन के पक्षि-अध्ययन, विलियम फ्रेजर और कर्नल स्किनर के लिए गुलाम अली खां के प्रतिकृति चित्र।

उन्नीसवीं शती के उत्तरार्ध में कलकत्ता, मुम्बई और मद्रास आदि प्रमुख भारतीय शहरों में यूरोपीय मॉडल पर कला स्कूल स्थापित हुए। त्रावणकोर के राजा रवि वर्मा के मिथकीय और सामाजिक विषयवस्तु पर आधारित तैल चित्र इस काल में सर्वाधिक

लोकप्रिय हुए। रवीन्द्रनाथ ठाकुर, अवनीन्द्रनाथ ठाकुर, इ.बी हैवल और आनन्द केहटिश कुमार स्वामी ने बंगाल कला शैली के उदय में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। बंगाल कला शैली 'शांति निकेतन' में फली-फूली जहाँ पर रवीन्द्रनाथ टैगोर ने 'कलाभवन' की स्थापना की। प्रतिभाशील कलाकार जैसे नंदलाल बोस, विनोद बिहारी मुखर्जी, आदि उभरते कलाकारों को प्रशिक्षण देकर प्रोत्साहित कर रहे थे। नन्दलाल बोस भारतीय लोक कला तथा जापानी चित्रकला से प्रभावित थे और विनोद बिहारी मुकर्जी प्राच्य परम्पराओं में गहरी रुचि रखते थे। इस काल के अन्य चित्रकार जैमिनी राय ने उड़ीसा की पट-चित्रकारी और बंगाल की कालीघाट चित्रकारी से प्रेरणा प्राप्त की। सिख पिता और हंगेरियन माता की पुत्री अमृता शेरगिल ने पेरिस, बुडापेस्ट में शिक्षा प्राप्त की तथापि भारतीय विषयवस्तु को लेकर गहरे चटख रंगों से चित्रकारी की। उन्होंने विशेषरूप से भारतीय नारी और किसानों को अपने चित्रों का विषय बनाया। यद्यपि इनकी मृत्यु अल्पायु में ही हो गई परंतु वह अपने पीछे भारतीय चित्रकला की समृद्ध विरासत छोड़ गई हैं।

धीरे-धीरे अंग्रेजी पढ़े-लिखे शहरी मध्यवर्ती लोगों की सोच में भारी परिवर्तन आने लगा और यह परिवर्तन कलाकारों की अभिव्यक्ति में भी दिखाई पड़ने लगा। ब्रिटिश शासन के विरुद्ध बढ़ती जागरूकता, राष्ट्रीयता की भावना और एक राष्ट्रीय पहचान की तीव्र इच्छा ने ऐसी कलाकृतियों को जन्म दिया जो पूर्ववर्ती कला की परम्पराओं से एकदम अलग थीं। सन् 1943 में द्वितीय विश्वयुद्ध के समय परितोष सेन, नीरद मजुमदार और प्रदोष दासगुप्ता आदि के नेतृत्व में कलकत्ता के चित्रकारों ने एक नया वर्ग बनाया जिसने भारतीय जनता की दशा को नई दृश्य भाषा और नवीन तकनीक के माध्यम से प्रस्तुत किया।[4]

दूसरा महत्त्वपूर्ण परिवर्तन था सन् 1948 में मुंबई में फ्रांसिस न्यूटन सूजा के नेतृत्व में प्रगतिशील कलाकार संघ की स्थापना। इस संघ के अन्य सदस्य थे एस एच रजा, एम एफ हुसैन, के एम अरा, एस के बाकरे तथा एच ए गोडे। यह संस्था बंगाल स्कूल ऑफ आर्ट से अलग हो गई और इसने स्वतंत्र भारत की आधुनिकतम सशक्त कला को जन्म दिया।

1970 से कलाकारों ने अपने वातावरण का आलोचनातमक दृष्टि से सर्वेक्षण करना प्रारंभ किया। गरीबी और भ्रष्टाचार की दैनिक घटनाएँ, अनैतिक भारतीय राजनीति, विस्फोटक साम्प्रदायिक तनाव, एवं अन्य शहरी समस्याएँ अब उनकी कला का विषय बनने लगीं। देवप्रसाद राय चौधरी एवं के सी एस पणिकर के संरक्षण में मद्रास स्कूल ऑफ आर्ट संस्था स्वतन्त्रतोत्तर भारत में एक महत्त्वपूर्ण कला केन्द्र के रूप में उभरी और आधुनिक कलाकारों की एक नई पीढ़ी को प्रभावित किया।

आधुनिक भारतीय चित्रकला के रूप में जिन कलाकारों ने अपनी पहचान बनाई, वे हैं- तैयब मेहता, सतीश गुजराल, कृष्ण खन्ना, मनजीत बाबा, के जी सुब्रह्मण्यन, रामकुमार, अंजलि इला मेनन, अकबर पप्रश्री, जतिन दास, जहांगीर सबावाला तथा ए. रामचन्द्रन आदि। भारत में कला और संगीत को प्रोत्साहित करने के लिए दो अन्य राजकीय संस्थाएँ स्थापित हुई-

- (1) नेशनल गैलरी ऑफ माडर्न आर्ट- इसमें एक ही छत के नीचे आधुनिक कला का एक बहुत बड़ा संग्रह है।
- (2) ललित कला अकादमी- जो सभी उभरते कलाकारों को विभिन्न कला क्षेत्रों में संरक्षण प्रदान करती है और उन्हें एक नई पहचान देती है।[5]

भारतीय अलंकृत कला

भारतीय लोगों की कलात्मक अभिव्यक्ति केवल कागज या पट्ट पर चित्र बनाने तक ही सीमित नहीं है। ग्रामीण क्षेत्रों में घर की दीवारों पर अलंकृत कला एक आम दृश्य है। पवित्र अवसरों और पूजा आदि में फर्श पर रंगोली या अलंकृत चित्रकला के डिजाइन 'रंगोली' आदि के रूप में बनाए जाते हैं जिनके कलात्मक डिजाइन एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक स्थानान्तरित होते चले जाते हैं। ये डिजाइन उत्तर में रंगोली, बंगाल में अल्पना, उत्तरांचल में ऐपन, कर्नाटक में रंगावली, तमिलनाडु में कोल्लम और मध्य प्रदेश में मांडना नाम से जाने जाते हैं। साधारणतया रंगोली बनाने में चावल के आटे का प्रयोग किया जाता है लेकिन रंगीन पाउडर या फूल की पंखुड़ियों का प्रयोग भी रंगोली को ज्यादा रंगीन बनाने के लिए किया जाता है। घरों तथा झोपड़ियों की दीवारों को सजाना भी एक पुरानी परंपरा है। इस प्रकार की लोक कला के विभिन्न उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं।

मिथिला चित्रकला

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal |

| Volume 10, Issue 12, December 2023 |

मिथिला चित्रकला बिहार प्रदेश के मिथिला क्षेत्र की पारम्परिक कला है। इसे 'मधुबनी लोककला' भी कहते हैं। इस चित्रकारी को गावं की महिलाएं सब्जी के रंगों से तथा त्रि-आयामी मूर्तियों के रूप में मिट्टी के रंगों से गोबर से पुते कागजों पर बनाती हैं और काले रंगों से बनाना समाप्त करती हैं। ये चित्र प्रायः सीता बनवास, राम-लक्ष्मण के वन्य जीवन की कहानियों अथवा लक्ष्मी, गणेश, हनुमान की मूर्त्तियों आदि हिन्दु मिथकों पर बनाए जाते हैं। इनके अतिरिक्त स्त्रियाँ दैवी विभूतियाँ जैसे सूर्य, चन्द्र आदि के भी चित्र बनाती हैं। इन चित्रों में दिव्य पौधे 'तुलसी' को भी चित्रित किया जाता है। ये चित्र अदालत के दृश्य, विवाह तथा अन्य सामाजिक घटनाओं को प्रदर्शित करते हैं।

मधुबनी शैली के चित्र बहुत वैचारिक होते हैं। पहले चित्रकार सोचता है और फिर अपने विचारों को चित्रकला के माध्यम से प्रस्तुत करता है। चित्रों में कोई बनावटीपन नहीं होता। देखने में यह चित्र ऐसे बिम्ब होते हैं जो रेखाओं और रंगों में मुखर होते हैं। प्रायः ये चित्र कुछ अनुष्ठानों अथवा त्योहारों के अवसर पर अथवा जीवन की विशेष घटनाओं के समय गांव या घरों की दीवारों पर बनाए जाते हैं। रेखागणितीय आकृतियों के बीच में स्थान को भरने के लिए जटिल फूल पत्ते, पशु-पक्षी, बनाए जाते हैं। कुछ मामलों में ये चित्र माताओं द्वारा अपनी बेटियों के विवाह के अवसर पर देने के लिए पहले से ही तैयार करके रख दिए जाते हैं। ये चित्र एक सुखी विवाहित जीवन जीने के तरीकों को भी प्रस्तुत करते हैं। विषय और रंगों के उपयोग में भी ये चित्र विभिन्न होते हैं। चित्रों में प्रयुक्त रंगों से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि यह चित्र किस समुदाय से संबंधित हैं। उच्च स्तरीय वर्ग द्वारा बनाए गए चित्र अधिक रंग बिरंग होते हैं जबकि निम्न वर्ग द्वारा चित्रों में लाल और काली रेखाओं का प्रयोग किया जाता है। मधुबनी कला शैली बड़ी मेहनत से गांव की महिलाओं द्वारा आगे अपने बेटियों तक स्थानान्तरित की जाती हैं। आजकल मधुबनी कला का उपयोग उपहार की सजावटी वस्तुओं, बधाई पत्रों आदि के बनाने में किया जा रहा है और स्थानीय ग्रामीण महिलाओं के लिए एक अच्छी आय का स्रोत भी सिद्ध हो रहा है।[6]

कलमकारी चित्रकला

'कलमारी' का शाब्दिक अर्थ है कलम से बनाए गए चित्र। यह कला पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होती हुई अधिकाधिक समृद्ध होती चली गई। यह चित्रकारी आंध्र प्रदेश में की जाती है। इस कला शैली में कपड़ों पर हाथ से अथवा ब्लाकों से सब्जियों के रंगों से चित्र बनाए जाते हैं। कलमकारी काम में वानस्पतिक रंग ही प्रयोग किए जाते हैं। एक छोटी-सी जगह 'श्रीकलहस्ती' कलमकारी चित्रकला का लोकप्रसिद्ध केन्द्र है। यह काम आन्ध्रप्रदेश में मसोलीपट्टनम में भी देखा जाता है। इस कला के अंतर्गत मंदिरों के भीतरी भागों को चित्रित वस्त्रपटलों से सजाया जाता है।

15वीं शताब्दी में विजयनगर के शासकों के संरक्षण में इस कला का विकास हुआ। इन चित्रों में रामायण, महाभारत और अन्य धार्मिक ग्रंथों से दृश्य लिए जाते हैं। यह कला शैली पिता से पुत्र को पीढ़ी दर पीढ़ी उत्तराधिकार के रूप में चलती जाती है। चित्र का विषय चुनने के बाद दृश्य पर दृश्य क्रम से चित्र बनाए जाते हैं। प्रत्येक दृश्य को चारों ओर से पेड़-पौधों और वनस्पतियों से सजाया जाता है। यह चित्रकारी वस्त्रों पर की जाती है। ये चित्र बहुत ही स्थायी होते हैं, आकार में लचीले तथा विषय वस्तु के अनुरूप बनाए जाते हैं। देवताओं के चित्र खूबसूरत बॉर्डर से सजाए जाते हैं और मंदिरों के लिए बनाए जाते हैं। गोलकुण्डा के मुस्लिम शासकों के कारण मसुलीपटनम कलमकारी प्रायः अधिकांश रूप में पारसी चित्रों और डिजाइनों से प्रभावित होती थी। हाथ से खुदे ब्लाकों से इन चित्रों की रूपरेखा और प्रमुख घटक बनाए जाते हैं। बाद में कलम से बारीक चित्रकारी की जाती है। यह कला वस्त्रों, चादरों और पर्दां से प्रारंभ हुई। कलाकार बांस की या खजूर की लकड़ी को तराशकर एक ओर से नुकीली और दूसरी ओर बारीक बालों के गुच्छे से युक्त कर देते थे जो ब्रश या कलम का काम देती थी।

कलमकारी के रंग पौधों की जड़ो को या पत्तों को निचोड़ कर प्राप्त किए जाते थे और इनमें लोहे, टिन, तांबें और फिटकरी के साल्ट्स मिलाए जाते थे।

उड़ीसा पटचित्र

कालीघाट के पटचित्रों के समान ही उड़ीसा प्रदेश से एक अन्य प्रकार के पटचित्र प्राप्त होते हैं। उड़ीसा पटचित्र भी अधिकतर कपड़ों पर ही बनाए जाते है फिर भी ये चित्र अधिक विस्तार से बने हुए, अधिक रंगीन और हिन्दु देवी-देवताओं से संबद्ध कथाओं को दर्शाते हैं।

फाड़ चित्र

फाड़ चित्र एक प्रकार के लंबे मफलर के समान वस्त्रों पर बनाए जाते हैं। स्थानीय देवताओं के ये चित्र प्रायः एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाये जाते हैं। इनके साथ पारम्परिक गीतकारों की टोली जुड़ी होती है जो स्क्राल पर बने चित्रों की कहानी का वर्णन करते जाते हैं। इस प्रकार के चित्र राजस्थान में बहुत अधिक प्रचलित हैं और प्रायः भीलवाड़ा जिले में प्राप्त होते हैं। फाड़ चित्र किसी गायक की वीरता पूर्ण कार्यों की कथा, अथवा किसी चित्रकार/किसान के जीवन ग्राम्य जीवन, पशुपक्षी और फूल-पौधों के वर्णन प्रस्तुत करते हैं। ये चित्र चटख और सूक्ष्म रंगों से बनाए जाते हैं। चित्रों की रूपरेखा पहले काले रंग से बनाई जाती है, बाद में उसमें रंग भर दिए जाते हैं।

फाड़ चित्रों की प्रमुख विषयवस्तु देवताओं और इनसे संबंधित कथा-कहानियों से संबद्ध होती है, साथ ही तत्कालीन महाराजाओं के साथ संबद्ध कथानकों पर भी आधारित होती है। इन चित्रों में कच्चे रंग ही प्रयुक्त होते हैं। इन फाड़ चित्रों की अलग एक विशेषता है मोटी रेखाएं और आकृतियों का द्वि-आयामी स्वरूप और पूरी रचना खण्डों में नियोजित की जाती है। फाड़ कला प्रायः 700 वर्ष पुरानी है। ऐसा कहा जाता है कि इसका जन्म पहले शाहपुरा में हुआ जो राजस्थान में भीलवाड़ा से 35 किमी दूर है। निरंतर शाही संरक्षण ने इस कला को निर्णयात्मक रूप से प्रोत्साहित किया जिससे पीढ़ियों से यह कला फलती-फूलती चली आ रही है। फड कला को पांचा जोशी ने शुरु किया था, तथा इनको इस कला का जनक कहा जाता है। फड कला के लिए श्री लाल जोशी को 2006 मे पदमश्री पुरुसकार मिल चुका है।[7]

गोंड कला

भारत के संथाल प्रदेश में उभरी एक बहुत ही उन्नत किस्म की चित्रकारी है जो बहुत ही सुंदर और अमूर्त कला की द्योतक है। गोदावरी बेल्ट की गोंड जाति जो जन जाति की ही एक किस्म है और जो संथाल जितनी ही प्राचीन है, अद्‌भुत रंगों में खूबसूरत आकृतियाँ बनाती रही है।

बाटिक प्रिंट

सभी लोककलाएँ और दस्तकारी मूल में पूरी तरह से भारतीय नहीं है। कुछ दस्तकारी तथा शिल्पकला और उनकी तकनीकी जैसे बाटिक प्राच्य प्रदेश से आयात की गई हैं परंतु अब इनका भारतीयकरण हो चुका है और भारतीय बाटिक एक परिपक्व कला का द्योतक है जो प्रचलित तथा महंगी भी हैं।

वर्ली चित्रकला

वर्ली चित्रकला के नाम का संबंध महाराष्ट्र के जनजातीय प्रदेश में रहने वाले एक छोटे से जनजातीय वर्ग से है। ये अलंकृत चित्र गोंड तथा कोल जैसे जनजातीय घरों और पूजाघरों के फर्शों और दीवारों पर बनाए जाते हैं। वृक्ष, पक्षी, नर तथा नारी मिल कर एक वर्ली चित्र को पूर्णता प्रदान करते हैं। ये चित्र शुभ अवसरों पर आदिवासी महिलाओं द्वारा दिनचर्या के एक हिस्से के रूप में बनाए जाते हैं। इन चित्रों की विषयवस्तु प्रमुखतया धार्मिक होती है और ये साधारण और स्थानीय वस्तुओं का प्रयोग करके बनाए जाते हैं जैसे चावल की लेही तथा स्थानीय सब्जियों का गोंद और इनका उपयोग एक अलग रंग की पृष्ठभूमि पर वर्गाकार, त्रिभुजाकार तथा वृत्ताकार आदि रेखागणितीय आकृतियों के माध्यम से किया जाता है। पशु-पक्षी तथा लोगों का दैनिक जीवन भी चित्रों की विषयवस्तु का आंशिक रूप होता है। श्रृंखला के रूप में अन्य विषय जोड़-जोड़ कर चित्रों का विस्तार किया जाता है। वर्ली जीवन शैली की झांकी सरल आकृतियों में खूबसूरती से प्रस्तुत की जाती है। अन्य आदिवासीय कला के प्रकारों से भिन्न वर्ली चित्रकला में धार्मिक छवियों को प्रश्रय नहीं दिया जाता और इस तरह ये चित्र अधिक धर्मनिरपेक्ष रूप की प्रस्तुति करते हैं।

कालीघाट चित्रकला

कालीघाट चित्रकला का नाम कोलकात्ता में स्थित 'कालीघाट' नामक स्थान से जुड़ा है। कलकत्ते में काली मंदिर के पास ही कालीघाट नामक बाजार है। 19वीं शती के प्रारंभ में पटुआ चित्रकार ग्रामीण बंगाल से कालीघाट में आकर बस गए, देवी-देवताओं की मूर्तियाँ बनाने के लिए। कागज पर पानी में घुले चटख रंगों का प्रयोग करके बनाए गए। इन रेखाचित्रों में स्पष्ट पृष्ठभूमि होती है। काली, लक्ष्मी, कृष्ण, गणेश, शिव और अन्य देवी-देवताओं को इनमें चित्रित किया जाता है। इसी प्रक्रिया में कलाकारों ने एक नए प्रकार की विशिष्ट अभिव्यक्ति को विकसित किया और बंगाल के सामाजिक जीवन से संबंधित विषयों को प्रभावशाली रूप में चित्रित करना प्रारंभ किया। इसी प्रकार की पट-चित्रकला उड़ीसा में भी पाई जाती है। बंगाल की उन्नीसवीं शती की क्रान्ति इस चित्रकला का मूल स्रोत बनी।[8]

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal |

| Volume 10, Issue 12, December 2023 |

जैसे-जैसे इन चित्रों का बाजार चढ़ता गया, कलाकारों ने अपने आप को हिन्दु देवी-देवताओं के एक ही प्रकार के चित्रों से मुक्त करना प्रारंभ किया और अपने चित्रों में तत्कालीन सामाजिक-जीवन को चित्रों की विषय वस्तु बनाने के तरीकों को खोजना प्रारंभ कर दिया। फोटोग्राफी के चलन से भी इन कलाकारों ने प्रेरणा प्राप्त की, पश्चिमी थियेटर के कार्यक्रम ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासनिक व्यवस्था से उत्पन्न हुई बंगाल की 'बाबू संस्कृति' तथा कोलकाता के नये-नये बने अमीर लोगों की जीवन शैली ने कला को प्रभावित किया। इन सभी प्रेरक घटकों ने मिलकर बंगला साहित्य, थियेटर और दृश्य कला को एक नवीन कल्पना प्रदान की। कालीघाट चित्रकला इस सांस्कृतिक और सौंदर्यपूर्ण परिवर्तन का आइना बन कर उभरी। हिन्दु देवी देवताओं पर आधारित चित्र बनाने वाले ये कलाकार अब रंगमंच पर नर्तकियों, अभिनेत्रियों, दरबारियों, शानशौकत वाले बाबुओं, घमण्डी छैलों के रंगबिरंगे कपड़ों, उनके बालों की शैली तथा पाइप से धूम्रपान करते हुए और सितार बजाते हुए दृश्यों को अपने चित्र पटल पर उतारने लगे। कालीघाट के चित्र बंगाल से आई कला के सर्वप्रथम उदाहरण माने जाने लगे।

विचार-विमर्श

चित्रकला एक द्विविमीय (two-dimensional) कला है। भारत में चित्रकला का एक प्राचीन स्रोत विष्णुधर्मोत्तर पुराण है।

इतिहास

चित्रकला का प्रचार चीन, मिस्र, भारत आदि देशों में अत्यंत प्राचीन काल से है। मिस्र से ही चित्रकला यूनान में गई, जहाँ उसने बहुत उन्नति की। ईसा से १४०० वर्ष पहले मिस्र देश में चित्रों का अच्छा प्रचार था। लंदन के ब्रिटिश संग्रहालय में ३००० वर्ष तक के पुराने मिस्री चित्र हैं। भारतवर्ष में भी अत्यंत प्राचीन काल से यह विधा प्रचलित थी, इसके अनेक प्रमाण मिलते हैं। रामायण में चित्रों, चित्रकारों और चित्रशालाओं का वर्णन बराबर आया है। विश्वकर्मीय शिल्पशास्त्र में लिखा है कि स्थापक, तक्षक, शिल्पी आदि में से शिल्पी को ही चित्र बनाना चाहिए। प्राकृतिक दृश्यों को अंकित करने में प्राचीन भारतीय चित्रकार कितने निपुण होते थे, इसका कुछ आभास भवभूति के उत्तररामचरित के देखने से मिलता है, जिसमें अपने सामने लाए हुए वनवास के चित्रों को देख सीता चकित हो जाती हैं। यद्यपि आजकल कोई ग्रंथ चित्रकला पर नहीं मिलता है, तथापि प्राचीन काल में ऐसे ग्रंथ अवश्य थे। कश्मीर के राजा जयादित्य की सभा के कवि दोमोदर गुप्त आज से ११०० वर्ष पहले अपने कुट्टनीमत नामक ग्रंथ में चित्रविद्या के 'चित्रसूत्र' नामक एक ग्रंथ का अल्लेख किया है। अजंता गुफा के चित्रों में प्राचीन भारतवासियों की चित्रनिपुणता देख चकित रह जाना पड़ता है। बड़े बड़े विज्ञ युरोपियनों ने इन चित्रों की प्रशंसा की है। उन गुफाओं में चित्रों का बनाना ईसा से दो सौ वर्ष पूर्व से आरंभ हुआ ता औरक आठवीं शताब्दी तक कुछ न कुछ गुफाएँ नई खुदती रहीं। अतः डेढ़ दो हजार वर्ष के प्रत्यक्ष प्रमाण तो ये चित्र अवश्य हैं।

चित्रविद्या सीखने के लिये पहले प्रत्येक प्रकार की सीधी टेढ़ी, वक्र आदि रेखाएँ खींचने का अभ्यास करना चाहिए। इसके उपरांत रेखाओं के ही द्वारा वस्तुओं के स्थूल ढाँचे बनाने चाहिए। इस विद्या में दूरी आदि के सिद्धांत का पूरा अनुशीलन किए बिना निपूणता नहीं प्राप्त हो सकती। दृष्टि के समानांतर या ऊपर नीचे के विस्तार का अंकन तो सहज है, पर आँखों के ठीक सामने दूर तक गया हुआ विस्तार अंकित करना कठिन विषय है। इस प्रकार की दूरी का विस्तार प्रदर्शित करने की क्रिया को 'पर्सपेक्टिव' (Perspective) कहते हैं। किसी नगर की दूर तक सामने गई हुई सड़क, सामने को बही हुई नदी आदि के दृश्य बिना इसके सिद्धांतों को जाने नहीं दिखाए जा सकते। किस प्रकार निकट के पदार्थ बड़े और साफ दिखाई पड़ते हैं और दूर के पदार्थ क्रमशः छोटे और धुँधले होते जाते हैं, ये सब बातें अंकित करनी पड़ती हैं। उदाहरण के लिये दूर पर रखा हुआ एक चौखूँटा संदूक लीजिए। मान लीजिए कि आप उसे एक ऐसे किनारे से देख रहे हैं जहाँ से उसके दो पार्श्व या तीन कोण दिखाई पड़ते हैं। अब चित्र बनाने के निमित्त हम एक पेंसिल आँखों के समानांतर लेकर एक आँख दबाकर देखेंगे तो संदूक की सबके निकटस्थ खड़ी कोणरेखा (ऊँचाई) सबसे बड़ी दिखाई देगी; जो पार्श्व अधिक सामने रहेगा, उसके दूसरे ओर की कोणरेखा उससे छोटी और जो पार्श्व कम दिखाई देगा, उसके दूसरे ओर की कोणरेखा सबसे छोटी दिखाई पड़ेगी। अर्थात् निकटस्थ कोण रेखा से लगा हुआ उस पार्श्व का कोण जो कम दिखाई देता है, अधिक दिखाई पड़नेवाले पार्श्व के कोण से छोटा होगा। दूसरा सिद्धांत आलोक और छाया का है जिसके बिना सजीवता नहीं आ सकती। पदार्थ का जो अंश निकट और सामने रहेगा वह खुलता (आलोकित) और स्पष्ट होगा; और जो दूर या बगल में पड़ेगा, वह स्पष्ट ओर कालिमा लिए होगा। पदार्थोंका उभार और गहराई आदि भी इसी आलोक और छाया के नियमानुसार दिकाई जाती है। जो अंश उठा या उभरा होगा, वह अधिक खुलता होगा और जो धँसा या गहरा होगा वह कुछ स्याही लिए होगा। इन्हीं सिद्धांतों को न जानने के कारण बाजारू चित्रकार शीशे आदि पर जो चित्र बनाते हैं वे खेलवाड़ से जान पड़ते हैं। चित्रों में रंग एक प्रकार की कूँची से भरा जाता है जिसे चित्रकार कलम कहते हैं। पहले यहाँ गिलहरी की पूँछ के बालों की कलम बनती थी। अब विलायती ब्रुश काम में आते हैं।[9]

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal |

| Volume 10, Issue 12, December 2023 |

परिणाम

चित्रकला का इतिहास प्रागैतिहासिक कलाकारों द्वारा बनाई गई कलाकृतियों और कलाकृतियों तक जाता है, और सभी संस्कृतियों तक फैला हुआ है। यह पुरातन काल से चली आ रही एक सतत, यद्यपि समय-समय पर बाधित, परंपरा का प्रतिनिधित्व करता है। संस्कृतियों, महाद्वीपों और सहस्राब्दियों से परे, चित्रकला के इतिहास में रचनात्मकता की एक सतत नदी शामिल है जो 21वीं सदी में भी जारी है। [1] 20वीं शताब्दी की शुरुआत तक यह मुख्य रूप से प्रतिनिधित्वात्मक , धार्मिक और शास्त्रीय रूपांकनों पर निर्भर था, जिसके बाद अधिक विशुद्ध रूप से अमूर्त और वैचारिक दृष्टिकोण को समर्थन मिला।

पूर्वी चित्रकला में विकास ऐतिहासिक रूप से पश्चिमी चित्रकला के समानान्तर है , सामान्य तौर पर, कुछ सदियों पहले। [2] अफ्रीकी कला , यहूदी कला , इस्लामी कला , इंडोनेशियाई कला , भारतीय कला , [3] चीनी कला , और जापानी कला [4] प्रत्येक का पश्चिमी कला पर महत्वपूर्ण प्रभाव था, और इसके विपरीत। [5]

प्रारंभ में उपयोगितावादी उद्देश्य की पूर्ति के लिए, उसके बाद शाही, निजी, नागरिक और धार्मिक संरक्षण के बाद, पूर्वी और पश्चिमी चित्रकला को बाद में अभिजात वर्ग और मध्यम वर्ग में दर्शक मिले। आधुनिक युग से लेकर मध्य युग से लेकर पुनर्जागरण तक चित्रकारों ने चर्च और धनी अभिजात वर्ग के लिए काम किया। [6] बारोक युग की शुरुआत से कलाकारों को अधिक शिक्षित और समृद्ध मध्यम वर्ग से निजी कमीशन प्राप्त होता था। [7] अंततः पश्चिम में " कला कला के लिए " के विचार को [8] फ्रांसिस्को डी गोया , जॉन कॉन्स्टेबल और जेएमडब्ल्यू टर्नर जैसे रोमांटिक चित्रकारों के काम में अभिव्यक्ति मिलनी शुरू हुई । [9] 19वीं सदी में व्यावसायिक आर्ट गैलरी का उदय हुआ , जिसने 20वीं सदी में संरक्षण प्रदान किया। [10]

प्रागैतिहासिक काल

सबसे पुरानी ज्ञात पेंटिंग लगभग 40,000 वर्ष पुरानी हैं, जो पश्चिमी यूरोप के फ्रेंको-कैंटब्रियन क्षेत्र और मारोस जिले (सुलावेसी , इंडोनेशिया) की गुफाओं में पाई जाती हैं। गुफा चित्रों का सबसे पुराना प्रकार हाथ की स्टेंसिल और सरल ज्यामितीय आकृतियाँ हैं; आलंकारिक गुफा चित्रों के सबसे पुराने निर्विवाद उदाहरण कुछ हद तक युवा हैं, लगभग 35,000 वर्ष पुराने। [11] नवंबर 2018 में, वैज्ञानिकों ने इंडोनेशियाई द्वीप पर लुबांग जेरिजी सालेह की गुफा में एक अज्ञात जानवर की 40,000 (शायद 52,000 जितनी पुरानी) वर्ष से अधिक पुरानी, सबसे पुरानी ज्ञात आलंकारिक कला पेंटिंग की खोज की सूचना दी। बोर्नियो (कालीमंतन)। [12] [13] हालांकि, दिसंबर 2019 में, सुलावेसी में मारोस-पंगकेप कार्स्ट में सुअर के शिकार को दर्शाने वाली आलंकारिक गुफा पेंटिंग और भी पुरानी, कम से कम 43,900 साल पुरानी होने का अनुमान लगाया गया था। इस खोज को "कहानी कहने का सबसे पुराना सचित्र रिकॉर्ड और दुनिया में सबसे प्रारंभिक आलंकारिक कलाकृति" माना गया। [14] [15] और हाल ही में, 2021 में, एक इंडोनेशियाई द्वीप में पाई गई सुअर की गुफा कला की सूचना मिली है, जो 45,500 साल से अधिक पुरानी है। [16] दुनिया भर में इंडोनेशिया, फ्रांस, भारत, स्पेन, दक्षिणी अफ्रीका , चीन, ऑस्ट्रेलिया आदि में गुफा चित्रों के उदाहरण हैं।

इन चित्रों का इन्हें बनाने वाले लोगों के लिए क्या अर्थ था, इसके बारे में विभिन्न अनुमान लगाए गए हैं। प्रागैतिहासिक कलाकारों ने जानवरों को अधिक आसानी से शिकार करने के लिए उनकी आत्मा को " पकड़ने" के लिए चित्रित किया होगा या पेंटिंग एक एनिमिस्टिक दृष्टि और आसपास की प्रकृति के प्रति श्रद्धांजलि का प्रतिनिधित्व कर सकती हैं । वे अभिव्यक्ति की बुनियादी आवश्यकता का परिणाम हो सकते हैं जो मनुष्य के लिए जन्मजात है, या वे व्यावहारिक जानकारी के प्रसारण के लिए हो सकते हैं।

ग्विओन ग्विओन शैल चित्र पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया के उत्तर-पश्चिम किम्बर्ली क्षेत्र में पाए गए । 15,000 ईसा पूर्व [17]

पुरापाषाण काल में गुफा चित्रों में मनुष्यों का चित्रण दुर्लभ था। अधिकतर, जानवरों को चित्रित किया जाता था, न केवल वे जानवर जो भोजन के रूप में उपयोग किए जाते थे, बल्कि वे जानवर भी थे जो गैंडा या बड़े फेलिडे जैसी ताकत का प्रतिनिधित्व करते थे , जैसा कि चौवेट गुफा में था। कभी-कभी बिंदु जैसे चिन्ह खींचे जाते थे। दुर्लभ मानव अभ्यावेदन में हाथ के निशान और स्टेंसिल, और मानव/पशु संकर को दर्शाने वाली आकृतियाँ शामिल हैं। फ़्रांस के आर्डेचे विभाग में चौवेट गुफा में पुरापाषाण युग की सबसे महत्वपूर्ण संरक्षित गुफा पेंटिंग शामिल हैं, जो लगभग 31,000 ईसा पूर्व चित्रित हैं। स्पेन में अल्तामिरा गुफा चित्र

14,000 से 12,000 ईसा पूर्व बनाए गए थे और इनमें अन्य के अलावा बाइसन भी दिखाए गए थे । लास्काक्स , दॉरदॉग्ने, फ्रांस में बैलों का हॉल , सबसे प्रसिद्ध गुफा चित्रों में से एक है और लगभग 15,000 से 10,000 ईसा पूर्व का है।

यदि चित्रों में कोई अर्थ है, तो यह अज्ञात रहता है। गुफाएँ आबादी वाले क्षेत्र में नहीं थीं, इसलिए उनका उपयोग मौसमी अनुष्ठानों के लिए किया जाता होगा। जानवरों के साथ संकेत भी होते हैं जो संभावित जादुई प्रयोग का संकेत देते हैं। लास्कॉक्स में तीर जैसे प्रतीकों की व्याख्या कभी-कभी कैलेंडर या पंचांग के रूप में की जाती है , लेकिन सबूत अनिर्णायक हैं। [18] मेसोलिथिक युग का सबसे महत्वपूर्ण कार्य मार्चिंग वॉरियर्स , स्पेन के कैस्टेलोन के सिंग्ले डे ला मोला में एक रॉक पेंटिंग थी , जो लगभग 7000 से 4000 ईसा पूर्व की है। इस्तेमाल की गई तकनीक संभवतः चट्टान पर रंगद्रव्य को थूकना या उड़ा देना था। शैलीगत होते हुए भी ये पेंटिंग काफी प्राकृतिक हैं। आंकड़े त्रि-आयामी नहीं हैं, भले ही वे ओवरलैप हों।

सबसे पहले ज्ञात भारतीय पेंटिंग प्रागैतिहासिक काल की रॉक पेंटिंग थीं , भीमबेटका के रॉक शेल्टर जैसी जगहों पर पाए जाने वाले पेट्रोग्लिफ्स , और उनमें से कुछ 5500 ईसा पूर्व से भी पुराने हैं। इस तरह के कार्य जारी रहे और कई सहस्राब्दियों के बाद, 7वीं शताब्दी में, महाराष्ट्र राज्य अजंता के नक्काशीदार खंभे भारतीय चित्रकला का एक अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। रंग, ज्यादातर लाल और नारंगी रंग के, खनिजों से प्राप्त हुए थे।

पूर्वी

पूर्वी चित्रकला के इतिहास में विभिन्न संस्कृतियों और धर्मों के प्रभावों की एक विस्तृत श्रृंखला शामिल है। पूर्वी चित्रकला में विकास ऐतिहासिक रूप से पश्चिमी चित्रकला के समानान्तर है , सामान्यतः कुछ सदियों पहले। [2] अफ्रीकी कला , यहूदी कला , इस्लामी कला , इंडोनेशियाई कला , भारतीय कला , [19] चीनी कला , कोरियाई कला और जापानी कला [4] प्रत्येक का पश्चिमी कला पर महत्वपूर्ण प्रभाव था, और, इसके विपरीत। [5]

चीनी चित्रकला दुनिया की सबसे पुरानी सतत कलात्मक परंपराओं में से एक है। आरंभिक पेंटिंग प्रतिनिधित्वात्मक नहीं बल्कि सजावटी थीं; उनमें चित्रों के बजाय पैटर्न या डिज़ाइन शामिल थे। प्रारंभिक मिट्टी के बर्तनों को सर्पिल, ज़िगज़ैग, बिंदुओं या जानवरों से चित्रित किया गया था। युद्धरत राज्यों की अवधि (403-221 ईसा पूर्व) के दौरान ही कलाकारों ने अपने आसपास की दुनिया का प्रतिनिधित्व करना शुरू किया। जापानी चित्रकला सबसे पुरानी और सबसे अधिक परिष्कृत जापानी कलाओं में से एक है , जिसमें विभिन्न प्रकार की शैली और शैलियाँ शामिल हैं। जापानी चित्रकला का इतिहास देशी जापानी सौंदर्यशास्त्र और आयातित विचारों के अनुकूलन के बीच संश्लेषण और प्रतिस्पर्धा का एक लंबा इतिहास है। कोरियाई चित्रकला, एक स्वतंत्र रूप के रूप में, 108 ईसा पूर्व के आसपास, गोजोसियन के पतन के आसपास शुरू हुई , जिससे यह दुनिया में सबसे पुरानी में से एक बन गई। उस समय की कलाकृति विभिन्न शैलियों में विकसित हुई, जो कोरिया काल के तीन राज्यों की विशेषता थी , विशेष रूप से पेंटिंग और भित्तिचित्र जो गोगुरियो के राजघराने की कब्रों को सुशोभित करते थे। तीन साम्राज्यों की अवधि के दौरान और गोरियो राजवंश के दौरान, कोरियाई चित्रकला की विशेषता मुख्य रूप से कोरियाई शैली के परिदृश्य, चेहरे की विशेषताओं, बौद्ध-केंद्रित विषयों और खगोलीय अवलोकन पर जोर था, जो कोरियाई खगोल विज्ञान के तेजी से विकास से सुगम हुआ था।[10]

निष्कर्ष

बुंदेली चित्रकला लोक संस्कृति और परंपराओं की प्रतीक है। धर्म-दर्शन के प्रति आस्था की अभिव्यक्ति के रूप में लोक चित्रकला आज भी उतनी ही सशक्त और समृद्ध है जितनी एक शतक पहले रही है। धार्मिक आयोजन, उत्सव और शुभ कार्यों की शुरुआत बुंदेलखंड की पारंपरिक चित्रकला के बिना अधूरी है।

आधुनिकता के आगे भले ही कई परंपराएं फीकी पड़ गई हों, लेकिन धर्म-कर्म में चित्रकला का महत्व कम नहीं हुआ है। सदियों पुरानी यह परंपरा आज भी उतनी ही लोकप्रिय है जितनी पहले थी। बुंदेली लोक चित्रकला के बिना धार्मिक त्योहारों व अनुष्ठानों की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। आस्था के हर पर्व पर बुंदेली चित्रकला श्रद्धा के अनूठे रूप में विद्यमान है। कई पीढ़ियों से आज तक चित्रकला धर्म व दर्शन के प्रति आस्था की अभिव्यक्ति का प्रतीक रही है। सिद्धबाबा, नदी के देवता, घटोई बाबा,

| ISSN: 2395-7639 | www.ijmrsetm.com | Impact Factor: 7.580| A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Journal |

| Volume 10, Issue 12, December 2023 |

खेरादेव, गौड़बब्बा, ब्रहमदेव, मैकासुर जैसे लोक देवताओं के स्थानों पर लोककला विविध रूपों में आस्था और विश्वास के रंग भरती है। इनके अलावा त्रिदेव के चित्र, स्वास्तिक, सत्रह गुड़ियों की आकृति, हुरसा-बेलन, ककई-ककवा, मोर, नाग, तुलसा घरूआ, गणेश, हरछठ, सुआटा, गोवर्धन और नौरता जैसे चित्रों की पूजा करके सुख-समृद्धि की कामना करना यहां की लोक संस्कृति में रची बसी मान्यताओं का अभिन्ना अंग हैं। इन चित्रों को दीवालों और भूमि पर हल्दी, आटा, रोली, सिंदूर, गेवरी, चावल से उकेरा जाता है। पूजा के पहले चौक पूरने में एक सी आकार की नौ कड़ियां बनाकर नवग्रह स्थापित करना, दीपावली पर सुराता-सुराती के रूप में लक्ष्मी-गणेश पूजन, होली-दीपावली पर रंगोली बनाना, करवाचौथ में दीवार पर करवा बनाना, जन्माष्टमी पर कन्हैया का चित्रात्मक पदांकन बुंदेली लोक चित्रकला के पारपंरिक तरीके हैं जो आज भी उतने ही लोकप्रिय हैं जितने पुराने जमाने में थे। चित्रकार मनोज सौनकिया का कहना है बुंदेलखंड में सुख-समृद्धि, अभय और मंगल कामनाओं से परिपूर्ण पर्वों व त्योहारों पर विशेष चित्र उकेरकर उनको पूजने की परंपरा रही है। इन चित्रों का अंकन आस्था, सोच, समर्पण सहित ईष्वर के प्रति वैचारिक जुड़ाव और भक्ति का सहज माध्यम है।[9]

मठ-मंदिरों में उकेरे हैं दुर्लभ भित्ति चित्र

बुंदेलखंड के पन्ना ा व ओरछा के मंदिरों व अंचल में बने कई मठों की दीवारों पर उकेरे गए दुर्लभ भित्ति चित्र आज भी उतने ही चटख और आकर्षक हैं जितने सदियों पहले थे। इन चित्रों में देवी देवताओं व राजसी ठाठ-बाट, बेलबूटे व फुलवारी, हाथी-घोड़े, राजा व सैनिकों सहित अनूठी कलाकृतियों को लाल व हरे रंगों से सहजता से उकेरा है। सतयुग व द्वापर युग की कथाओं को चित्रों के माध्यम से संजोया है। ये सारे चित्र चितेरी और बुंदेली कलम शैली के दुर्लभ चित्रो में से एक हैं। जो बुंदेलखंड की परंपरा व धार्मिक आस्था के रंगों से सजाए गए हैं। बुंदेलखंड विश्वविद्यालय झांसी में ललित कला संस्थान से जुड़ी डा. श्वेता पांडे के अनुसार बुंदेली चित्रकला समृद्ध सांस्कृतिक विरासत का हिस्सा है। जिस पर साहित्यकारों ने शोध किए हैं, कई पुस्तकें भी लिखी हैं।[10]

संदर्भ

1. "चित्र के छह अंग (रवीन्द्रनाथ ठाकुर की व्याख्या)". मूल से 13 दिसंबर 2014 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 12 दिसंबर 2014.
2. ↑ सी शिवमूर्ति : Chitrasutra of the Vishnudharmottara, पृष्ट 166
3. भारतीय चित्रकला (हिन्दी ब्लाग)
4. चित्रकला विभाग, एमएमएच कॉलेज गाजियाबाद
5. भारतीय चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास (गूगल पुस्तक ; लेखक - वाचस्पति गैरोला)
6. Italian Paintings
7. जापानी रंगचित्र कला 'हाइगा'
8. भारतीय चित्रकला
9. ललित कला
10. रामायण और चित्रकला

INNO SPACE
SJIF Scientific Journal Impact Factor
Impact Factor: 7.580

doi crossref

निस्केयर NISCAIR

INTERNATIONAL JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY RESEARCH

IN SCIENCE, ENGINEERING, TECHNOLOGY AND MANAGEMENT

+91 99405 72462 +91 63819 07438 ijmrsetm@gmail.com

www.ijmrsetm.com